महंत मोती दास

बनाम

एस. पी. साही, हिन्दू धार्मिक न्यासों के विशेष प्रभारी अधिकारी एवं अन्य

(तथा संबद्ध अपीलें)

(एस. आर. दास, मुख्य न्यायाधीश; एस. के. दास, पी. बी. गजेन्द्रगडकर, के. एन. वांचू एवं एम. हिदायतुल्ला, न्यायमूर्ति गण)

15 अप्रैल, 1959

हिन्दू धार्मिक न्यास—बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 की संवैधानिक वैधता—हिन्दू, जैन तथा सिख धार्मिक न्यासों के बीच भेद—विधायी वर्गीकरण—न्यासियों पर लगाए गए प्रतिबंध—वैधता—क्या अधिनियम धार्मिक आचरण में हस्तक्षेप करता है—अधिनियम के प्रशासनिक व्यय हेतु शुल्क का अधिरोपण—वैधता—बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 (1951 का बिहार अधिनियम 1), धाराएँ 2, 5, 6, 7, 8, 28, 29, 32, 55(2), 60, 70—भारत का संविधान, अनुच्छेद 14, 19(1)(एफ), 19(5), 25, 26, 27।

अपीलकर्ताओं, जो संबंधित मठों या आस्थानों के महंत थे, को बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 की धारा 59 के अधीन बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद के अध्यक्ष द्वारा नोटिस दिए गए, जिनमें उनसे उनके कब्जे में स्थित संपत्तियों के विवरण एवं लेखे प्रस्तुत करने को कहा गया। उन्होंने इस अधिनियम की संवैधानिक वैधता को उच्च न्यायालय में याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी, निम्नलिखित आधारों पर—(1) कि अधिनियम की धाराएँ 2, 5, 6, 7 एवं 8 संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती हैं, क्योंकि एक ओर हिन्दू धार्मिक न्यासों और दूसरी ओर सिख धार्मिक न्यासों के बीच असमानता है, जिन्हें अधिनियम के दायरे से बाहर रखा गया है, तथा हिन्दू धार्मिक न्यासों और जैन धार्मिक न्यासों के बीच भी असमानता है, यद्यपि दोनों अधिनियम के अंतर्गत आते हैं; (2) कि अधिनियम के अध्याय V के उपबंध, विशेषकर धाराएँ 28 एवं 32, संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) का उल्लंघन करते हैं, क्योंकि इन उपबंधों के अंतर्गत महंत या शेबैत व्यावहारिक रूप से अपने प्रबंधन के अधिकार से वंचित हो जाता है और पर्षद का मात्र सेवक बनकर रह जाता है; (3) कि अधिनियम के उपबंध संविधान के अनुच्छेद 25 एवं 26 का उल्लंघन करते हैं, क्योंकि किसी धार्मिक न्यास के बजट में परिवर्तन करने या संशोधन करने

की शक्ति अथवा न्यासी को निर्देश देने की शक्ति पर्षद द्वारा इस प्रकार प्रयोग की जा सकती है जिससे मठ या मंदिर में धार्मिक आचरण के समुचित पालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े; (4) कि धारा 70 एक अनधिकृत कर आरोपित करती है; तथा (5) कि धारा 55(2) संविधान के अनुच्छेद 133 का उल्लंघन करती है।

अभिनिर्धारित, (1) कि बिहार राज्य में धार्मिक न्यासों के संबंध में सिखों, हिन्दुओं तथा जैनों के बीच भिन्नताएँ विद्यमान हैं और उनके-अपने धार्मिक न्यासों के प्रशासन के विषय में जैनों और हिन्दुओं की आवश्यकताएँ समान नहीं हैं; अतः बिहार विधानमंडल के लिए यह विधिसम्मत है कि वह उन सिखों को, जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता नहीं हो सकती थी, अधिनियम के क्षेत्र से बाहर रखे तथा हिन्दुओं और जैनों के बीच भेद करे। फलतः अधिनियम की धाराएँ 2, 5, 6, 7 एवं 8 संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करती हैं।

यह सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि यद्यपि अनुच्छेद 14 वर्ग-आधारित विधि निर्माण को निषिद्ध करता है, तथापि वह विधि निर्माण के प्रयोजन हेतु युक्तिसंगत वर्गीकरण को निषिद्ध नहीं करता; और अनुमेय वर्गीकरण की कसौटी पर खरा उतरने के लिए दो शर्तों का पूर्ण होना आवश्यक है, अर्थात्—(1) वर्गीकरण एक बोधगम्य भेद पर आधारित होना चाहिए, जो समूह में सम्मिलित व्यक्तियों या वस्तुओं को उन व्यक्तियों या वस्तुओं से अलग-अलग करता हो जो उस समूह से बाहर रखे गए हैं, और (2) उस भेद का उस उद्देश्य से युक्तिसंगत संबंध होना चाहिए जिसे विचाराधीन विधि द्वारा प्राप्त किया जाना है।

श्री राम कृष्ण डालमिया बनाम न्यायमूर्ति श्री एस. आर. तेंदोलकर, [1959] एस.सी.आर. 279, पर आश्रित।

(2) कि न्यासी की उस स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जिसमें वह न्यास संपत्ति का धारक है, तथा अधिनियम के उद्देश्य या प्रयोजन को दृष्टिगत रखते हुए, अधिनियम के अध्याय V में लगाए गए प्रतिबंध वास्तव में न्यास के उद्देश्यों के क्रियान्वयन तथा न्यास संपत्तियों के बेहतर प्रशासन, संरक्षण और परिरक्षण के लिए हैं, और वे संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (5) के अर्थ में सामान्य जनहित में युक्तिसंगत प्रतिबंध हैं।

(3) कि अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 का उल्लंघन नहीं करता, क्योंकि अधिनियम के वे उपबंध जो पर्षद को बजट में परिवर्तन करने तथा न्यासी को निर्देश देने की शक्ति प्रदान करते हैं, कुछ सीमाओं के अधीन हैं, अर्थात् उनका प्रयोग धार्मिक न्यास

के समुचित प्रशासन के लिए किया जाना चाहिए; और इसके अतिरिक्त, अधिनियम का कोई भी उपबंध "धर्म के विषयों" में हस्तक्षेप नहीं करता, जिनमें वे प्रथाएँ भी सम्मिलित हैं जिन्हें कोई धार्मिक संप्रदाय अपने धर्म का अंग मानता है।

(4) कि अधिनियम की धारा 70 एक वैध प्रावधान है क्योंकि यह केवल अधिनियम के प्रशासन में हुए या होने वाले खर्चों की पूर्ति के उद्देश्य से शुल्क लगाने का प्रावधान करती है और यह कर नहीं है।

महंत श्री जगन्नाथ रामानुज दास बनाम उड़ीसा राज्य, [1954] एस.सी.आर. 1046, अनुसरण किया गया।

(5) कि अधिनियम की धारा 55(2) संविधान के अनुच्छेद 133 का उल्लंघन नहीं करती, क्योंकि वह अनुच्छेद 133 अथवा संविधान के किसी अन्य ऐसे अनुच्छेद को, जो सर्वोच्च न्यायालय में अपीलों से संबंधित है, निरस्त नहीं करती और न ही उसे निरस्त करने का उद्देश्य रखती है।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1955 की दीवानी अपील संख्याएँ 225, 226, 228, 229 एवं 248।

पटना उच्च न्यायालय द्वारा विविध न्यायिक वाद संख्याएँ 418/52 एवं 124/53 में दिनांक 5 अक्टूबर, 1953 तथा स्वत्व वाद संख्या 106/53, विविध न्यायिक वाद संख्याएँ 188/53 एवं 235/53 में दिनांक 8 अक्टूबर, 1953 को पारित निर्णयों एवं आदेशों के विरुद्ध अपीलें।

आर. पटनायक, अपीलकर्ता की ओर से (दीवानी अपील संख्या 225/55 में)।
आर. सी. प्रसाद, अपीलकर्ताओं की ओर से (दीवानी अपील संख्याएँ 226, 228, 229 एवं 248/55 में)।

महाबीर प्रसाद, बिहार राज्य के महाधिवक्ता; त्रिवेणी प्रसाद सिन्हा एवं एस. पी. वर्मा, उत्तरदाताओं की ओर से (दीवानी अपील संख्याएँ 225, 226, 228 एवं 229/55 में)।
महाबीर प्रसाद, बिहार राज्य के महाधिवक्ता एवं एस. पी. वर्मा, उत्तरदाता की ओर से (दीवानी अपील संख्या 248/55 में)।

15 अप्रैल, 1959। न्यायालय का निर्णय **एस. के. दास, न्यायमूर्ति** द्वारा दिया गया—

ये पाँच अपीलों का एक समूह है, जिन्हें एक साथ सुना गया है और इन अपीलों में निर्णय हेतु मुख्य प्रश्न बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 (1951 का बिहार 1), जिसकी आगे "अधिनियम" के रूप में संज्ञा दी गई है, की संवैधानिक वैधता है। इन अपीलों में से चार पटना उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 एवं 227 के अधीन दायर याचिकाओं से उत्पन्न हुई हैं। इनमें से एक, अर्थात् सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 228, एक वाद से संबंधित है, जो प्रारम्भ में पटना के अवर न्यायाधीश के न्यायालय में दायर किया गया था, परन्तु बाद में संविधान के अनुच्छेद 228 के अधीन पारित आदेश द्वारा उच्च न्यायालय को स्थानांतरित कर दिया गया। रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं तथा वाद के वादियों ने अधिनियम की संवैधानिक वैधता को कुछ आधारों पर चुनौती दी, जिनका हम आगे उल्लेख करेंगे। याचिकाओं तथा वाद का प्रतिवाद बिहार राज्य तथा/या बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद के अध्यक्ष द्वारा किया गया, जो अब हमारे समक्ष उत्तरदाता हैं।

उच्च न्यायालय ने तीन अलग-अलग निर्णयों में—जिनमें से दो दिनांक 5 अक्टूबर, 1953 के थे और तीसरा दिनांक 8 अक्टूबर, 1953 का—यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम एक वैध कानून है और इसी मुख्य निष्कर्ष के आधार पर रिट याचिकाओं तथा वाद को निरस्त कर दिया। याचिकाकर्ताओं तथा वादियों, जो हमारे समक्ष अपीलकर्ता हैं, ने संविधान के अनुच्छेद 132 के अधीन उच्च न्यायालय से प्रमाण-पत्र प्राप्त किए कि इन प्रकरणों में संविधान की व्याख्या से संबंधित महत्वपूर्ण विधि-प्रश्न निहित हैं, और उन्हीं प्रमाण-पत्रों के आधार पर ये अपीलें इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई हैं।

तथ्य अत्यंत सीमित परिधि में निहित हैं। सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 225 में अपीलकर्ता महंत मोती दास हैं और उनका कथन था कि वे बिहार राज्य के मुंगेर ज़िले के परबत्ता गाँव में स्थित एक मठ या स्थल के महंत थे; कि वे श्री कबीर साहिब द्वारा स्थापित धर्म के अनुयायी थे; कि उस स्थल की संपत्तियाँ महंतों की निजी संपत्ति के रूप में मानी जाती थीं; और यह कि अधिनियम के अधीन गठित बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद के अध्यक्ष को अधिनियम की धारा 59 के अधीन उन्हें नोटिस देने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि अधिनियम *अधिकार क्षेत्र से बाहर* तथा असंवैधानिक था और किसी भी स्थिति में उनके मठ या स्थल पर लागू नहीं होता था। सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 226 में अपीलकर्ता महंत राम दास ने इसी प्रकार यह आरोप लगाया कि कि वे उसी मुंगेर ज़िले के भुथारी गाँव में स्थित एक मठ या स्थल के महंत थे; कि वे एक "बैरागी साधु" थे और रामानंदी लस्करी श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे; कि वे मठ की संपत्तियों के पूर्ण स्वामी

थे; और यह कि बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद के अध्यक्ष को उन्हें उनकी अभिरक्षा में स्थित संपत्तियों के विवरण एवं लेखे प्रस्तुत करने के लिए नोटिस जारी करने का कोई अधिकार नहीं था। सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 228 में अपीलकर्ताओं ने अपने वादपत्र में समान अभ्यावेदन किए और अधिनियम के "वैधता" को चुनौती दी, यह उल्लेख करते हुए कि उनके कार्रवाई का कारण उस तिथि से उत्पन्न हुआ, जिस दिन अधिनियम को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के उपरांत प्रथम बार बिहार राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 229 में अपीलकर्ता महंत महाबीर दास ने यह कथन किया कि वे उसी ज़िले में स्थित बिसनपुर स्थल नामक स्थल के महंत थे। उन्हें भी बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद के अध्यक्ष द्वारा विवरण एवं लेखे प्रस्तुत करने के लिए नोटिस प्राप्त हुआ और उन्होंने समान आधारों पर अधिनियम की वैधता को चुनौती दी। सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 248 में महंत राम कृष्ण दास ने यह आरोप लगाया कि कि प्रश्नगत मंदिर, जिसे पटना नगर में स्थित भिखन दास ठाकुरबाड़ी के नाम से जाना जाता है, का निर्माण बेनीदासजी द्वारा अपने निजी धन से किया गया था और उन्होंने उसमें कुछ देवताओं की प्रतिष्ठा की थी।

यह आरोप था कि मंदिर तथा उसकी संपत्तियां अधिनियम में प्रयुक्त "धार्मिक न्यास" की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आती और आगे यह कि अधिनियम *संविधान के विरुद्ध* है, क्योंकि यह उनके कुछ मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। इन सभी मामलों में प्रतिवाद यह था कि अधिनियम वैध है और प्रश्नगत स्थलों अथवा मंदिर तथा उनकी संपत्तियों पर लागू होता है।

अपीलकर्ताओं की ओर से हमारे समक्ष प्रस्तुत मुख्य तर्क यह है कि अधिनियम इस आधार पर दोषपूर्ण है कि इसके विभिन्न उपबंध अपीलकर्ताओं के उन मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, जो (क) अनुच्छेद 14; (ख) अनुच्छेद 19(1)(एफ); तथा (ग) अनुच्छेद 25, 26 और 27 के अधीन संरक्षित हैं। अधिनियम को इस आधार पर भी चुनौती दी गई है कि यह एक अनधिकृत कर अधिरोपित करता है और साथ ही संविधान के अनुच्छेद 133 का उल्लंघन करता है।

इस अवस्था में, अधिनियम के उद्देश्य अथवा प्रयोजन का उल्लेख करना तथा उसके प्रासंगिक उपबंधों का संक्षेप में निरूपण करना आवश्यक है। यह अधिनियम बिहार विधानमंडल द्वारा पारित किया गया और राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त की, जिसकी अधिसूचना

21 फरवरी, 1951 को बिहार राजपत्र में प्रकाशित हुई। अधिनियम का दीर्घ शीर्षक तथा प्रस्तावना इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। दीर्घ शीर्षक यह कहता है कि यह "हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन तथा उनसे संबंधित संपत्तियों के संरक्षण और परिरक्षण के लिए अधिनियम" है। प्रस्तावना भी इसी उद्देश्य को दोहराती है और यह और स्पष्ट करती है कि अधिनियम का उद्देश्य बिहार राज्य में हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन की व्यवस्था करना है। धारा 1 संक्षिप्त शीर्षक देती है तथा विस्तार और प्रवर्तन का प्रावधान करती है, अधिनियम 15 अगस्त, 1951 से प्रभावी हुआ। धारा 2 परिभाषा संबंधी धारा है और अधिनियम में "हिन्दू" शब्द का अर्थ उस व्यक्ति से है जो हिन्दू मूल के किसी धर्म का अनुयायी हो तथा इसमें जैन और बौद्ध सम्मिलित हैं, किन्तु सिख सम्मिलित नहीं हैं। "धार्मिक न्यास" तथा "न्यास संपत्ति" अभिव्यक्तियों की परिभाषा निम्न प्रकार से की गई है:—

"धारा 2(1). 'धार्मिक न्यास' से अभिप्राय किसी भी ऐसे व्यक्त या निर्माणात्मक न्यास से है, जो किसी ऐसे प्रयोजन के लिए सृजित या विद्यमान हो जिसे हिन्दू विधि द्वारा धार्मिक, पुण्य या परोपकारी के रूप में मान्यता प्राप्त हो; किन्तु इसमें सिख धर्म के अनुसार सृजित कोई न्यास अथवा ऐसा न्यास जो पूर्णतः सिख समुदाय के लाभ के लिए हो, सम्मिलित नहीं होगा, और न ही ऐसा निजी अर्पण सम्मिलित होगा जो किसी पारिवारिक देवता की पूजा के लिए निर्मित हो, जिसमें सामान्य जनता की कोई रुचि न हो;

....

(प) "न्यास संपत्ति" से अभिप्राय उस संपत्ति से है जो किसी धार्मिक न्यास से संबंधित हो।"

धारा 3 में उपबंध है:—

"यह अधिनियम उन सभी धार्मिक न्यासों पर लागू होगा, चाहे वे इस अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व सृजित हुए हों या पश्चात्, जिनकी किसी भी भाग की संपत्ति बिहार राज्य में स्थित हो।"

धारा 4 में बिहार अधिनियम 16, 1954 द्वारा संशोधन किया गया और यह प्रावधान करता है कि आवश्यकतानुसार, कुछ पूर्ववर्ती अधिनियमों—जो सार्वजनिक धार्मिक न्यासों और धर्मार्थ दानों से संबंधित थे—जैसे कि धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम, 1863 (1863 का 20), धर्मार्थ

दान अधिनियम, 1890 (1890 का 6) तथा धर्मार्थ एवं धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 (1920 का 14)—का संशोधन या निरसन किया जा सके। धारा 4 की उपधारा (5) हमारे समक्ष उपस्थित प्रश्नों में से एक पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है और उसे पूर्ण रूप से उद्धृत किया जाना आवश्यक है:—

"धारा 4(5). धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम, 1863 तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92, इस राज्य में इस अधिनियम में परिभाषित किसी भी धार्मिक न्यास पर लागू नहीं होंगी।"

अधिनियम का अध्याय II पर्षद के गठन से संबंधित है। धारा 5 बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद के गठन का प्रावधान करती है। धारा 5(3) में यह उपबंध है कि पर्षद एक निगमित निकाय होगा तथा उसका शाश्वत उत्तराधिकार और एक सामान्य मुहर होगी, और उसे चल एवं अचल संपत्ति का अधिग्रहण तथा धारण करने की शक्ति होगी। धारा 7 प्रथम पर्षद के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति तथा उनके पदावधि का प्रावधान करती है। धारा 8 द्वितीय तथा प्रत्येक आगामी पर्षद के गठन की शर्तों का वर्णन करती है। अध्याय IV धार्मिक न्यासों के अधीक्षक की नियुक्ति एवं योग्यता से संबंधित है। इस अध्याय में पर्षद के लिए अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति का भी प्रावधान है। अध्याय V पर्षद की शक्तियों एवं कर्तव्यों से संबंधित है। धारा 28(1) में यह उपबंध है कि राज्य के समस्त धार्मिक न्यासों का सामान्य अधीक्षण पर्षद में निहित होगा और पर्षद ऐसे सभी युक्तिसंगत तथा आवश्यक कार्य करेगा, जिससे यह सुनिश्चित हो कि ऐसे न्यासों का समुचित पर्यवेक्षण एवं प्रशासन किया जाए तथा उनकी आय का विधिवत् विनियोजन और उपयोग उन न्यासों के उद्देश्यों के लिए तथा उन प्रयोजनों के अनुरूप किया जाए, जिनके लिए वे स्थापित किए गए थे और जिनके लिए वे अस्तित्व में हैं। धारा 28(2) में कुछ विषयों के संबंध में पर्षद की शक्तियों एवं कर्तव्यों का अत्यंत विस्तार से उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ, धारा 28(2)(ई) में यह कहा गया है कि पर्षद का यह कर्तव्य होगा कि किसी भी धार्मिक न्यास की संपत्ति तथा कार्यालय, जिसमें लेखे भी सम्मिलित हैं, का निरीक्षण कराया जाए और इस प्रयोजन के लिए अधीक्षक या उसके किसी सदस्य, अधिकारी या सेवक को अधिकृत किया जाए। धारा 28(2)(ग) पर्षद को यह अधिकार देती है कि वह किसी धार्मिक न्यास के विधिसम्मत प्रशासन हेतु, उस न्यास पर लागू विधि तथा संस्थापक की इच्छाओं (जहाँ तक वे ज्ञात की जा सकती हैं) के अनुरूप निर्देश दे। धारा 32 पर्षद को धार्मिक न्यासों के समुचित प्रशासन के लिए योजना बनाने का अधिकार प्रदान करती है। अध्याय VI क्षेत्रीय न्यास समितियों की स्थापना

तथा उन पर अधिरोपित शक्तियों एवं कर्तव्यों से संबंधित है। अध्याय VIII अचल संपत्तियों के हस्तांतरण तथा न्यासियों द्वारा धन उधार लेने से संबंधित है। इस अध्याय की धारा 44 यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक न्यास की अचल संपत्ति का न्यासी द्वारा विक्रय, बंधक या तीन वर्ष से अधिक अवधि के लिए पट्टे के रूप में किया गया कोई भी हस्तांतरण तब तक वैध नहीं होगा जब तक कि वह पर्षद की पूर्व स्वीकृति से न किया गया हो। धारा 45 यह निषिद्ध करती है कि कोई न्यासी पर्षद की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी धार्मिक न्यास के प्रयोजन के लिए धन उधार न ले। अध्याय X न्यासियों तथा उनके कर्तव्यों से संबंधित है। इस अध्याय की धारा 59 न्यासी पर यह दायित्व आरोपित करती है कि वह धार्मिक न्यास का विवरण प्रस्तुत करे। धारा 60 धार्मिक न्यासों के बजट तथा ऐसे बजटों को पर्षद के समक्ष प्रस्तुत करने से संबंधित है, और पर्षद ऐसे बजट में उस प्रकार तथा उस सीमा तक परिवर्तन या संशोधन कर सकता है, जैसा वह उपयुक्त समझे। अध्याय XI न्यासियों द्वारा लेखों के लेखापरीक्षण तथा अनियमित व्ययों की वसूली से संबंधित है। अध्याय XIII में एक न्यास निधि के सृजन का प्रावधान किया गया है, जो पर्षद में निहित होगी। धारा 70 में यह उपबंध है कि अधिनियम के प्रशासन में व्ययित खर्चों की पूर्ति के उद्देश्य से प्रत्येक धार्मिक न्यास का न्यासी पर्षद को ऐसी शुल्क राशि अदा करेगा, जो उसकी शुद्ध आय के पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, जैसा कि पर्षद समय-समय पर राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से निर्धारित करे। अध्याय XVI पर्षद के विघटन अथवा अधिरोपण से संबंधित है। धारा 80 में यह प्रावधान है कि यदि राज्य सरकार की राय में पर्षद अपने ऊपर आरोपित कर्तव्यों के निर्वहन में चूक करता है अथवा अपनी शक्तियों का अतिक्रमण या दुरुपयोग करता है, तो राज्य सरकार पर्षद को दोषी घोषित कर सकती है और यह निर्देश दे सकती है कि पर्षद को अधिरोपित किया जाए। धारा 81 में यह उपबंध है कि जहाँ अधिरोपण का आदेश पारित किया गया हो, वहाँ पर्षद के सभी सदस्य अपने पदों से मुक्त हो जाएंगे और पर्षद द्वारा संपादित किए जाने वाले समस्त कार्य एवं कर्तव्य ऐसे व्यक्ति द्वारा संपादित किए जाएंगे, जैसा राज्य सरकार निर्देश दे। धारा 81 राज्य सरकार को नियम बनाने का अधिकार प्रदान करती है और धारा 83 पर्षद को ऐसे उपविधियाँ बनाने का अधिकार देती है, जो अधिनियम तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रतिकूल न हों।

अब हम अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत प्रतिपादनों पर विचार करते हैं। प्रथम प्रतिपादन यह है कि धाराएँ 2, 5, 6, 7 और 8 संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती हैं। यह इंगित किया गया है कि धारा 2 में “हिन्दू” शब्द की परिभाषा में सिख सम्मिलित

नहीं हैं; तथा धारा 5 जैन धार्मिक न्यासों को छोड़कर अन्य धार्मिक न्यासों के लिए एक पर्षद का गठन करती है और जैन धार्मिक न्यासों के लिए दो अलग-अलग पर्षद भी स्थापित करती है—एक श्वेताम्बर जैन धार्मिक न्यासों के लिए और दूसरा दिगम्बर जैन धार्मिक न्यासों के लिए। आगे यह भी इंगित किया गया है कि धाराओं 6, 7 और 8 के अधीन जैन धार्मिक न्यासों के अतिरिक्त अन्य धार्मिक न्यासों के लिए पर्षद की संरचना, जैन धार्मिक न्यासों के लिए स्थापित दोनों पर्षदों की संरचना से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है। यह निवेदन किया गया है कि एक ओर हिन्दू धार्मिक न्यासों और दूसरी ओर सिख धार्मिक न्यासों के बीच व्यवहार में असमानता है, क्योंकि सिख धार्मिक न्यासों को अधिनियम के क्षेत्र से बाहर रखा गया है; तथा दूसरी ओर हिन्दू धार्मिक न्यासों और जैन धार्मिक न्यासों के बीच भी व्यवहार में असमानता है, यद्यपि दोनों अधिनियम के अंतर्गत आते हैं। हम यह नहीं मानते कि इस प्रतिपादन में कोई सार है। संविधान के अनुच्छेद 14 के उपबंध इस न्यायालय के समक्ष अनेक पूर्ववर्ती मामलों में विचारार्थ आ चुके हैं (देखें *श्री राम कृष्ण डालमिया बनाम न्यायमूर्ति एस. आर. तेंदोलकर*([1])में उल्लिखित प्रकरण)। अतः इस अनुच्छेद के अर्थ, क्षेत्र और प्रभाव पर विस्तृत चर्चा करना अनावश्यक है। इतना कहना पर्याप्त है कि इस न्यायालय के अनेक निर्णयों की शृंखला द्वारा यह अब भली-भाँति स्थापित हो चुका है कि यद्यपि अनुच्छेद 14 वर्ग-आधारित विधि निर्माण को निषिद्ध करता है, तथापि वह विधि निर्माण के प्रयोजनों के लिए युक्तिसंगत वर्गीकरण को निषिद्ध नहीं करता; और अनुमेय वर्गीकरण की कसौटी पर खरा उतरने के लिए दो शर्तों का पूर्ण होना आवश्यक है, अर्थात्—(1) वर्गीकरण एक बोधगम्य भेद पर आधारित होना चाहिए, जो समूह में सम्मिलित व्यक्तियों या वस्तुओं को उन व्यक्तियों या वस्तुओं से अलग-अलग करता हो जो उस समूह से बाहर रखे गए हैं, और (2) उस भेद का उस उद्देश्य से युक्तिसंगत संबंध होना चाहिए जिसे विचाराधीन विधि द्वारा प्राप्त किया जाना है। वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है, जैसे—भौगोलिक आधार पर, अथवा उद्देश्यों या व्यवसायों के अनुसार, आदि। इस न्यायालय के निर्णय यह भी स्थापित करते हैं कि किसी अधिनियम की संवैधानिकता के पक्ष में एक अनुमान रहता है और जो व्यक्ति उसे चुनौती देता है, उस पर यह दायित्व होता है कि वह यह प्रदर्शित करे कि संवैधानिक गारंटी का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है; यह भी अनुमान किया जाना चाहिए कि विधायिका अपने लोगों की आवश्यकताओं को समझती है और उनका समुचित आकलन करती है तथा उसके विधि-निर्माण अनुभव से स्पष्ट हुई समस्याओं की ओर उन्मुख होते हैं और उसके द्वारा किया गया भेदभाव पर्याप्त आधारों पर आधारित होता है; और

1 [1959] एस.सी.आर. 279.

यह भी कि विधायिका हानि की विभिन्न मात्राओं को पहचानने के लिए स्वतंत्र है तथा अपने प्रतिबंधों को उन मामलों तक सीमित कर सकती है जहाँ आवश्यकता सर्वाधिक स्पष्ट प्रतीत होती है। यह विवादित नहीं है, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा इंगित किया गया है, कि हिन्दुओं, सिखों और जैनों के बीच उनके द्वारा अंगीकार किए गए धर्म के कुछ मौलिक तत्त्वों तथा उनके द्वारा पालन की जाने वाली धार्मिक प्रथाओं में कुछ भिन्नताएँ हैं; सिखों के यहाँ कोई जाति-प्रथा या पुरोहित नहीं होते, यद्यपि उनके यहाँ *ग्रंथी* होते हैं जो विवाह और अन्य समारोहों का संचालन करते हैं; वे वेदों, पुराणों या शास्त्रों में विश्वास नहीं करते, कम-से-कम उसी प्रकार नहीं जैसे हिन्दू उनमें विश्वास करते हैं। जैन भी वेदों की दैवी सत्ता को स्वीकार नहीं करते और न ही वे श्राद्ध या मृतकों के संस्कार करते हैं, और न ही वे ब्राह्मणों की आध्यात्मिक सत्ता को मान्यता देते हैं (मैने का हिन्दू विधि, 11वाँ संस्करण, पृ. 82)। आगे यह भी इंगित किया गया है कि हिन्दुओं, सिखों और जैनों के बीच धार्मिक न्यासों के विषय में संगठनात्मक भिन्नताएँ भी विद्यमान हैं। बिहार में सिख धार्मिक न्यासों की संख्या अधिक नहीं है और उनकी संगठन-प्रणाली मूलतः भिन्न है। जैन दो मुख्य शाखाओं में विभाजित हैं—श्वेताम्बर जैन और दिगम्बर जैन—और प्रत्येक शाखा का अलग-अलग केंद्रीय संगठन है। अधिनियम की धारा 8 इन भिन्नताओं को मान्यता देती है; उदाहरणार्थ, श्वेताम्बर जैनों की एक सभा होती है जिसे श्री संघ कहा जाता है और अधिनियम की धारा 8(2)(ग) के अधीन यह सभा श्वेताम्बर जैन धार्मिक न्यास पर्षद के लिए पाँच व्यक्तियों का निर्वाचन करने के लिए अधिकृत है। इसी प्रकार, दिगम्बर जैनों की भी एक सभा होती है जिसे दिगम्बर समाज कहा जाता है और अधिनियम की धारा 8(3)(ग) के अधीन यह सभा दिगम्बर जैन धार्मिक न्यास पर्षद के लिए पाँच व्यक्तियों का निर्वाचन करने के लिए अधिकृत है। इन भिन्नताओं को दृष्टिगत रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि बिहार राज्य में धार्मिक न्यासों के विषय में सिख, हिन्दू और जैन समान स्थिति में हैं या कि जैनों और हिन्दुओं की आवश्यकताएँ उनके-अपने धार्मिक न्यासों के प्रशासन के संबंध में समान हैं; अतः, इस न्यायालय द्वारा विधायी वर्गीकरण के संबंध में स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, बिहार विधानमंडल के लिए यह विधिसम्मत था कि वह उन सिखों को, जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता नहीं हो सकती थी, अधिनियम के क्षेत्र से बाहर रखे तथा हिन्दुओं और जैनों के बीच भेद करे। अतः अपीलकर्ताओं की ओर से यह प्रतिपादन कि अधिनियम के विभिन्न उपबंध अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं, सर्वथा निराधार है।

अपीलकर्ताओं की ओर से अगला प्रतिपादन यह है कि अध्याय V के उपबंध, विशेषकर

धाराएँ 28 और 32, संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) के अधीन प्रदत्त मौलिक अधिकार— अर्थात् न्यास संपत्तियों का अधिग्रहण करने, धारण करने और उनका परित्याग करने के अधिकार—का उल्लंघन करते हैं। हमारे समक्ष प्रस्तुत यह तर्क इस आधार पर आगे बढ़ा है कि जिन संपत्तियों का धारण अपीलकर्ता करते हैं, वे अधिनियम के अर्थ में न्यास संपत्तियां हैं; किन्तु हमें यहाँ यह कहना आवश्यक है कि अपीलकर्ताओं ने यह भी आरोप लगाया कि है कि ये संपत्तियां उनकी निजी संपत्तियों हैं, जिसके उस पहलू का हम आगे विचार करेंगे। अधिनियम का अध्याय V, और विशेषतः उसकी धारा 28, पर्षद की शक्तियों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करती है। इन शक्तियों एवं कर्तव्यों में से कुछ का हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं। धारा 32 पर्षद को, स्वप्रेरणा से अथवा इस आशय से उससे किए गए आवेदन पर, जिसमें किसी न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा आवेदन किया गया हो, धार्मिक न्यास के समुचित प्रशासन के लिए योजनाएँ बनाने का अधिकार प्रदान करती है। इस अध्याय में अन्य धाराएँ भी हैं, जो अधिनियम के किसी भी उद्देश्य की पूर्ति हेतु या उसके उपबंधों को प्रभावी बनाने के लिए पर्षद को अनुबंध करने, धन उधार लेने आदि की शक्ति प्रदान करती हैं। धारा 58 के अधीन प्रत्येक न्यासी को पर्षद द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निर्देशों का पालन करना होता है, जो अधिनियम के किसी भी उपबंध के अंतर्गत दिए गए हों। धारा 28 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों में बजट तैयार करने और अनुमोदित करने की शक्ति, किसी धार्मिक न्यास की संपत्ति तथा कार्यालय का निरीक्षण कराने की शक्ति, सूचना, प्रतिवेदन, विवरण आदि माँगने की शक्ति, उस न्यास पर लागू विधि तथा संस्थापक की इच्छाओं के अनुरूप उसके समुचित प्रशासन हेतु निर्देश देने की शक्ति, कुछ परिस्थितियों में न्यासी को उसके पद से हटाने की शक्ति, तथा न्यास निधि का नियंत्रण एवं प्रशासन करने की शक्ति सम्मिलित हैं। हमारे समक्ष प्रस्तुत तर्क यह है कि किसी हिन्दू धार्मिक न्यास के महंत या शेबैत की स्थिति पद और स्वामित्व अधिकार का सम्मिश्रण है, और अधिनियम के उपबंधों के अधीन महंत या शेबैत व्यावहारिक रूप से अपने प्रबंधन के अधिकार से वंचित हो जाता है तथा पर्षद का मात्र सेवक बनकर रह जाता है; यह प्रतिपादित किया गया है कि इससे अपीलकर्ताओं के अनुच्छेद 19(1)(एफ) के अधीन मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है।

अंगूरबाला मुल्लिक बनाम देबब्रत मुल्लिक([1]) में, इस न्यायालय के बहुमत का निर्णय देते हुए मुखर्जी, न्यायमूर्ति ने कहा है कि शेबैत की सटीक विधिक स्थिति का यद्यपि पूर्णतः

---

1 [1951] एस.सी.आर. 1125, 1133.

सुस्पष्ट परिभाषा देना संभव नहीं हो सकता, तथापि उसके निहितार्थ पर्याप्त रूप से स्थापित हैं। अब यह विधिसम्मत रूप से स्थापित है कि देवोत्तर संपत्ति के संबंध में शेबैत का संबंध अंग्रेजी विधि के अंतर्गत न्यासी और न्यास संपत्ति के संबंध के समान नहीं होता।

मुखर्जी, न्यायमूर्ति ने कहा:—

"अंग्रेजी विधि में न्यास संपत्ति का विधिक स्वामित्व न्यासी में निहित होता है, जो उसे *न्यास-लाभी* के फायदे के लिए धारण करता है। इसके विपरीत, हिन्दू धार्मिक दान में समर्पित संपत्ति का समस्त स्वामित्व देवता या स्वयं संस्था में एक विधिक व्यक्तित्व के रूप में निहित हो जाता है और शेबैत या महंत मात्र प्रबंधक होता है। तथापि, यद्यपि शेबैत प्रबंधक है और तकनीकी अर्थ में न्यासी नहीं है, उसे केवल एक पद के रूप में वर्णित करना भी उचित नहीं होगा। शेबैत को न केवल दान के संबंध में कर्तव्यों का निर्वहन करना होता है, बल्कि उसे देवोत्तर संपत्ति में एक लाभकारी हित भी प्राप्त होता है.......... ऐसे लगभग सभी दानों में शेबैत को देवोत्तर संपत्ति के उपभोग के फल में एक अंश प्राप्त होता है, जो दान की शर्तों या प्रथा अथवा प्रचलन पर निर्भर करता है। यहाँ तक कि जहाँ शेबैत के पद से कोई पारिश्रमिक संबद्ध नहीं होता, वहाँ भी उसे उस समर्पित संपत्ति में किसी प्रकार का अधिकार या हित प्राप्त होता है, जो कम से कम आंशिक रूप से स्वामित्व अधिकार का स्वरूप धारण करता है। अतः, *शेबैति* की संकल्पना में पद और संपत्ति—दोनों के तत्व, अर्थात् कर्तव्य और व्यक्तिगत हित—आपस में मिश्रित एवं संयुक्त होते हैं और इनमें से किसी एक तत्व को दूसरे से अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इसी व्यक्तिगत या लाभकारी हित की उपस्थिति, जो समर्पित संपत्ति में निहित होती है, शेबैतत्व को स्वामित्व अधिकार का स्वरूप प्रदान करती है और उससे संपत्ति के विधिक गुणधर्म संबद्ध हो जाते हैं।"

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वर्तमान में आक्षेपित अधिनियम के पारित होने से पूर्व भी महंत या शेबैत पर अधिरोपित दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रवर्तन हेतु वैधानिक व्यवस्था विद्यमान थी। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 में यह उपबंध था कि किसी परोपकारी या धार्मिक प्रकृति के सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए सृजित किसी व्यक्त या निर्माणात्मक न्यास के कथित उल्लंघन के मामले में, अथवा जहाँ ऐसे किसी न्यास के प्रशासन के लिए न्यायालय के निर्देश को आवश्यक समझा जाए, वहाँ महाधिवक्ता, अथवा न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्ति, जिन्होंने महाधिवक्ता की लिखित सहमति प्राप्त कर ली हो, एक वाद संस्थापित कर सकते थे ताकि निम्नलिखित प्रकार की डिक्री प्राप्त की जा सके—(क)

किसी न्यासी को पद से हटाने हेतु, (ख) किसी नए न्यासी की नियुक्ति हेतु, (ग) किसी संपत्ति को किसी न्यासी में निहित करने हेतु, (घ) लेखों एवं जांच का निर्देश देने हेतु, (ङ) यह घोषित करने हेतु कि न्यास संपत्ति या उसमें निहित हित का कौन-सा भाग न्यास के किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए आवंटित किया जाएगा, (च) न्यास संपत्ति के संपूर्ण या किसी भाग को पट्टे पर देने, विक्रय करने, बंधक रखने या विनिमय करने के लिए प्राधिकृत करने हेतु, (छ) योजना निर्धारित करने हेतु और/अथवा (ज) प्रकरण की प्रकृति के अनुसार अन्य उपयुक्त अनुतोष प्रदान करने हेतु। अतः उक्त धारा ने न्यासियों पर अधिरोपित दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रवर्तन के लिए एक महत्वपूर्ण व्यवस्था प्रदान की थी और न्यायालय को प्रदत्त अधिकार-क्षेत्र अत्यंत व्यापक था। अब, अनुच्छेद 19(1)(एफ) के अधीन प्रदत्त अधिकार उसके खंड (5) के अधीन है, जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया है कि उक्त उपखंड में निहित कोई भी बात राज्य को सामान्य जनहित में उस अधिकार के प्रयोग पर युक्तिसंगत प्रतिबंध लगाने हेतु विधि बनाने से नहीं रोकेगी। हम उच्च न्यायालय के मत से सहमत हैं कि अधिनियम द्वारा न्यासियों की शक्तियों पर लगाए गए प्रतिबंध वास्तव में, जैसा कि अधिनियम की प्रस्तावना में उल्लिखित है, बिहार राज्य में हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन तथा उनसे संबंधित संपत्तियों के संरक्षण एवं परिरक्षण के लिए अभिप्रेत हैं। यह भी सत्य है कि अधिनियम न्यासियों पर अधिरोपित दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रवर्तन के लिए दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद की दीर्घ एवं जटिल प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक प्रभावी एवं शीघ्र उपाय प्रदान करता है। विभिन्न विषयों में पर्षद को संक्षिप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, किन्तु यह नियंत्रण न्यास के बेहतर एवं अधिक प्रभावी प्रशासन तथा न्यास संपत्तियों के संरक्षण एवं परिरक्षण के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस संदर्भ में धारा 28 की उपधारा (1) का उल्लेख प्रासंगिक है, जिसमें यह उपबंध है कि पर्षद ऐसे सभी युक्तिसंगत एवं आवश्यक कार्य करेगा जिससे यह सुनिश्चित हो कि धार्मिक न्यासों का समुचित पर्यवेक्षण एवं प्रशासन किया जाए तथा उनकी आय का विधिवत् विनियोजन एवं उपयोग उन उद्देश्यों के लिए किया जाए, जिनके लिए ऐसे न्यास स्थापित किए गए थे। धारा 60(2) निस्संदेह पर्षद को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह किसी भी धार्मिक न्यास के बजट में उस प्रकार और उस सीमा तक परिवर्तन या संशोधन कर सके, जैसा वह उचित समझे। किन्तु धारा 60 की उपधारा (6) यह स्पष्ट करती है कि इस धारा में निहित कोई भी बात पर्षद को यह अधिकार नहीं देती कि वह किसी भी बजट में ऐसा परिवर्तन या संशोधन करे जो संस्थापक की इच्छाओं के विपरीत हो, जहाँ तक ऐसी इच्छाएँ ज्ञात की जा सकती हैं, अथवा अधिनियम के उपबंधों के प्रतिकूल हो। धारा 28(2)(एच) पर्षद को कुछ परिस्थितियों में किसी न्यासी को

उसके पद से हटाने का अधिकार देती है; किन्तु धारा 28 की उपधारा (3) यह प्रावधान करती है कि उपधारा (2) के खंड (एच) के अधीन पर्षद द्वारा पारित हटाने के आदेश की सूचना संबंधित न्यासी को दी जाएगी और ऐसा न्यासी उक्त आदेश की सूचना की तिथि से 90 दिनों के भीतर जिला न्यायाधीश के समक्ष उस आदेश में परिवर्तन, संशोधन या उसे निरस्त करने के लिए आवेदन कर सकता है। धारा 28(2)(एच) पर्षद को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह किसी धार्मिक न्यास की किसी संपत्ति को किसी अन्य संपत्ति में रूपांतरित करने की स्वीकृति दे, यदि पर्षद इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसा रूपांतरण न्यास के हित में है; तथापि, इसमें एक महत्वपूर्ण उपबंध है कि ऐसा कोई रूपांतरण तब तक स्वीकृत नहीं किया जाएगा जब तक कि पर्षद अपने सदस्यों के कम-से-कम तीन-चौथाई बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पारित न कर दे और उक्त प्रस्ताव को जिला न्यायाधीश द्वारा अनुमोदित न किया जाए। यहाँ तक कि धारा 32 के अधीन योजना के निर्धारण के संबंध में भी, उसकी उपधारा (3) में एक सुरक्षा-प्रावधान है, जिसके अनुसार न्यासी या न्यास में हित रखने वाला कोई भी व्यक्ति योजना के प्रकाशन की तिथि से तीन माह के भीतर जिला न्यायाधीश के समक्ष उस योजना में परिवर्तन, संशोधन या उसे निरस्त करने के लिए आवेदन कर सकता है।

ये तथा अन्य समान सुरक्षा-प्रावधान स्पष्ट रूप से अधिनियम के अधीन लगाए गए प्रतिबंधों के वास्तविक स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं, और हमारा मत है कि न्यासी की उस स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए, जिसमें वह न्यास संपत्ति का धारक है, तथा अधिनियम के उद्देश्य या प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, लगाए गए प्रतिबंध वास्तव में न्यास के उद्देश्यों के क्रियान्वयन तथा उसके बेहतर प्रशासन, संरक्षण और परिरक्षण के लिए हैं; अतः वे संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (5) के अर्थ में सामान्य जनहित में युक्तिसंगत प्रतिबंध हैं। इस संदर्भ में, अधिनियम के आक्षेपित उपबंध मद्रास हिन्दू धार्मिक एवं परोपकारी न्यास अधिनियम, 1951 तथा उड़ीसा हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1939 (जिसे संशोधन अधिनियम II, 1952 द्वारा संशोधित किया गया था) के उन उपबंधों से भिन्न हैं, जिन पर इस न्यायालय ने *हिन्दू धार्मिक न्यासों के आयुक्त, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीर, श्री शिरूर मठ*([1]) तथा *महंत श्री जगन्नाथ रामानुज दास बनाम उड़ीसा राज्य*([2]) में विचार किया था, और जिन्हें इस आधार पर अवैध ठहराया गया था कि वे संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (5) के अर्थ में युक्तिसंगत प्रतिबंध नहीं थे।

---

1 [1954] एस.सी.आर. 1005.

2 [1954] एस.सी.आर. 1046.

अपीलकर्ताओं का तीसरा प्रतिपादन संविधान के अनुच्छेद 25 एवं 26 पर आधारित है। अपीलकर्ताओं ने अनुच्छेद 25(1) का सहारा लिया है, जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया है कि लोक-व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन, सभी व्यक्तियों को अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से अंगीकार करने, आचरण करने और उसका प्रचार करने का अधिकार है। अनुच्छेद 26 पर भी इस प्रतिपादन के समर्थन में भरोसा किया गया है कि प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसका कोई भी अंग (क) धार्मिक एवं परोपकारी प्रयोजनों के लिए संस्थाएँ स्थापित करने और बनाए रखने का तथा (ख) धर्म के विषयों में अपने स्वयं के कार्यों का प्रबंधन करने का अधिकार रखता है। यह देखना कठिन है कि अधिनियम का कोई भी उपबंध किस प्रकार अनुच्छेद 25 द्वारा प्रदत्त अधिकार, अर्थात् अंतःकरण की स्वतंत्रता तथा धर्म का स्वतंत्र रूप से अंगीकार, आचरण और प्रचार करने के अधिकार में हस्तक्षेप करता है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता हमारे समक्ष अधिनियम का कोई विशिष्ट उपबंध इंगित करने में असमर्थ रहे हैं जो ऐसे अधिकार में हस्तक्षेप करता हो। अपीलकर्ताओं की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी धार्मिक न्यास से संबंधित बजट में परिवर्तन या संशोधन करने की शक्ति अथवा किसी न्यासी को निर्देश देने की शक्ति का प्रयोग पर्षद इस प्रकार कर सकता है जिससे किसी मठ या मंदिर में धार्मिक आचरण के समुचित पालन पर प्रभाव पड़े और इस प्रकार अनुच्छेद 25 के अधीन प्रदत्त अधिकार का अतिक्रमण हो; और इस प्रतिपादन के समर्थन में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने *आयुक्त, हिन्दू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयर, श्री शिरूर मठ*([1]) के निर्णय पर भरोसा किया, यह प्रतिपादित करने के लिए कि हमारे संविधान में धर्म की स्वतंत्रता केवल धार्मिक मान्यताओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह धार्मिक आचरण तक भी विस्तृत है, यद्यपि उन प्रतिबंधों के अधीन है जिन्हें संविधान ने स्वयं निर्धारित किया है। इस प्रतिपादन का उत्तर द्वि-आयामी है: हमने पूर्व में इंगित किया है कि बजट में परिवर्तन करने की शक्ति अधिनियम की धारा 60 की उपधारा (6) के अधीन सीमित है और पर्षद को यह अधिकार नहीं है कि वह बजट में ऐसा परिवर्तन या संशोधन करे जो संस्थापक की इच्छाओं के प्रतिकूल हो या अधिनियम के उपबंधों के विरुद्ध हो। न्यासी को निर्देश देने की शक्ति भी इसी प्रकार की सीमा के अधीन है, अर्थात् निर्देश धार्मिक न्यास के विधिसम्मत प्रशासन के लिए होने चाहिए, जो उस न्यास पर लागू विधि तथा संस्थापक की इच्छाओं के अनुरूप हों, जहाँ तक ऐसी इच्छाएँ ज्ञात की जा सकती हैं, और वे उस विधि के प्रतिकूल न हों। अधिनियम के सभी प्रासंगिक उपबंधों का मूल तत्व यह है कि धार्मिक न्यास के उद्देश्यों का विधिवत् पालन सुनिश्चित किया जाए, न

1 [1954] एस.सी.आर. 1005.

कि उनका उल्लंघन या हनन किया जाए। द्वितीयतः, जैसा कि *आयुक्त, हिन्दू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयर, श्री शिरूर मठ*([1]), पृष्ठ 1030 में कहा गया है, "यह आशंका कि प्रदत्त शक्तियों का कुछ व्यक्तिगत मामलों में दुरुपयोग हो सकता है, इस बात का आधार नहीं बनती कि वह उपबंध स्वयं विधि में दोषपूर्ण या अवैध है।"

अनुच्छेद 26 के खंड (क) और (ख) के संबंध में भी स्थिति वही है। अधिनियम का कोई भी उपबंध ऐसा नहीं है जो किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अंग के उस अधिकार में हस्तक्षेप करता हो, जिसके द्वारा वे धार्मिक एवं परोपकारी प्रयोजनों के लिए संस्थाएँ स्थापित और बनाए रख सकें; न ही अधिनियम के उपबंध किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अंग के इस अधिकार में हस्तक्षेप करते हैं कि वे धर्म के विषयों में अपने स्वयं के कार्यों का प्रबंधन कर सकें। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान *श्री वेंकटरमण देवरु बनाम मैसूर राज्य*([2]) के निर्णय की ओर आकर्षित किया है, जहाँ *आयुक्त, हिन्दू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयर, श्री शिरूर मठ*(1) के पूर्व निर्णय का अनुसरण करते हुए यह अवलोकित किया गया था कि धर्म के विषयों में वे आचरण भी सम्मिलित होते हैं जिन्हें कोई समुदाय अपने धर्म का अंग मानता है। हमारा ध्यान *रतिलाल पानाचंद गांधी बनाम बंबई राज्य*([3]) के निर्णय की ओर भी आकर्षित किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी धार्मिक संप्रदाय या संप्रदाय-विशेष को धर्म संबंधी विषयों में अपने स्वयं के कार्यों का प्रबंधन करने का अधिकार है, और इसमें यह अधिकार भी सम्मिलित है कि वह न्यास संपत्ति या उसकी आय को धर्म तथा उन धार्मिक उद्देश्यों के लिए व्यय करे, जिन्हें न्यास के संस्थापक द्वारा निर्दिष्ट किया गया हो या जो किसी विशेष संस्था में प्रचलित प्रथा के आधार पर स्थापित हों। उक्त निर्णय में यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि न्यास संपत्ति या निधियों को ऐसे प्रयोजनों के लिए परिवर्तित करना, जिन्हें धर्मार्थ आयुक्त या न्यायालय उपयुक्त या आवश्यक समझे, यद्यपि संस्थापक के मूल उद्देश्यों को तब भी पूरा किया जा सकता हो, धार्मिक संस्थाओं के अपने धार्मिक कार्यों के प्रबंधन की स्वतंत्रता पर अनुचित अतिक्रमण है। हम यह नहीं मानते कि उपर्युक्त निर्णय अपीलकर्ताओं के लिए कोई सहायता प्रदान करते हैं। यह मानते हुए भी कि "धर्म के विषयों" में वे आचरण

---

1 [1954] एस.सी.आर. 1005.

2 [1954] एस.सी.आर. 895.

3 [1954] एस.सी.आर. 1055.

सम्मिलित हैं जिन्हें कोई धार्मिक संप्रदाय अपने धर्म का अंग मानता है, अधिनियम का कोई भी उपबंध ऐसे आचरणों में हस्तक्षेप नहीं करता; न ही अधिनियम के उपबंध न्यास संपत्ति या निधियों को उन प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करने का प्रयास करते हैं, जो न्यास के संस्थापक द्वारा निर्दिष्ट किए गए हों या जो किसी विशेष संस्था में प्रचलित प्रथा के आधार पर स्थापित हों। इसके विपरीत, अधिनियम के उपबंध उन उद्देश्यों को कार्यान्वित करने का प्रयास करते हैं जिनके लिए न्यास की स्थापना की गई थी तथा न्यासी द्वारा कुप्रबंधन और अपव्यय को रोकते हैं। अन्य शब्दों में, अधिनियम अपने विभिन्न उपबंधों द्वारा न्यास को पराजित करने के बजाय उसे पूर्ण करने का प्रयास करता है। हमारे मत में यह तर्क कि अधिनियम के उपबंध संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 का उल्लंघन करते हैं, सर्वथा निराधार है।

अंत में, अपीलकर्ताओं ने अधिनियम की धारा 70 की वैधता को चुनौती दी है, जिसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:—

"धारा 70(1). इस अधिनियम के प्रशासन में हुए ये होने वाले व्ययों की पूर्ति के उद्देश्य से प्रत्येक धार्मिक न्यास का न्यासी, प्रत्येक वित्तीय वर्ष में, पर्षद को ऐसी शुल्क राशि अदा करेगा, जो पिछले पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष में उसकी शुद्ध आय के पाँच प्रतिशत से अधिक न हो, जैसा कि पर्षद समय-समय पर राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से निर्धारित करे।"

यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि धारा 70 एक अनधिकृत कर अधिरोपित करती है। हमारे मत में, यह प्रश्न हमारे निर्णय *महंत श्री जगन्नाथ रामानुज दास बनाम उड़ीसा राज्य* (1) द्वारा पहले ही निराकृत हो चुका है, जिसमें संविधान के अंतर्गत विधायी प्रयोजनों के लिए कर और शुल्क के बीच का भेद स्पष्ट किया गया था और उड़ीसा हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1939 की धारा 49 के अंतर्गत समान अधिरोपण के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह अधिरोपण एक शुल्क है, कर नहीं। वहाँ पृष्ठ 1054 पर यह अवलोकित किया गया:—

"प्राप्त संग्रह को सार्वजनिक राजस्व में शामिल नहीं किया जाता है और न ही इसे अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए व्यय के विनियोजन हेतु निर्धारित तरीके से विनियोजित किया जाता है। वे उस निधि का निर्माण करते हैं, जिसका उपबंध अधिनियम की धारा 50 में किया गया है। ... हम यह भी मत व्यक्त करते हैं कि इस प्रकार का अधिरोपण संविधान के अनुच्छेद 27 के अधीन निषिद्ध नहीं कहा जा सकता। अनुच्छेद 27 द्वारा जो निषिद्ध है,

वह किसी कर की प्राप्ति का किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय के संवर्धन या संरक्षण के व्ययों के भुगतान में विशेष विनियोजन है। धारा 49 के अंतर्गत किए गए अंशदान का उद्देश्य हिन्दू धर्म या उसके भीतर किसी संप्रदाय का संवर्धन या संरक्षण नहीं है; इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि जहाँ कहीं भी धार्मिक न्यास और संस्थाएँ हैं, उनका समुचित प्रशासन हो।विधानमंडल धार्मिक संस्थानों के धर्मनिरपेक्ष प्रशासन को नियंत्रित करना चाहता है और अधिनियम में प्रतिपादित उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि धार्मिक संस्थानों से जुड़ी संपत्तियों का उचित प्रबंधन हो और उनकी आय का उचित उपयोग उन उद्देश्यों के लिए किया जाए जिनके लिए उनकी स्थापना की गई थी या वे अस्तित्व में हैं। चूँकि किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय के पक्ष में कोई प्रश्न नहीं उठता, इसलिए अनुच्छेद 27 का कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता।" ये टिप्पणियाँ वर्तमान मामले पर भी समान रूप से लागू होती हैं।

यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 55(2) संविधान के अनुच्छेद 133 का उल्लंघन करती है और अतः अवैध है। धारा 55 का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:—

"55(1). इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित न होने पर, इस अधिनियम के अधीन जिला न्यायाधीश द्वारा पारित प्रत्येक आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी।

(2) इस धारा के अधीन अपील में पारित किसी आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी।"

हम यह नहीं मानते कि अधिनियम की धारा 55(2) संविधान के अनुच्छेद 133 या सर्वोच्च न्यायालय में अपीलों से संबंधित संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद को निरस्त करती है अथवा निरस्त करने का आशय रखती है। ऐसे अपीलें निस्संदेह सर्वोच्च न्यायालय में जाएँगी, बशर्ते कि उन अपीलों के लिए आवश्यक शर्तें पूर्ण हों। हमारे मत में यह स्पष्ट है कि अधिनियम सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को प्रभावित नहीं कर सकता।

अब हम अपीलकर्ताओं के मामले के उस भाग पर विचार करते हैं, जिसमें वे यह दावा करते हैं कि संबंधित संपत्तियाँ निजी संपत्तियाँ हैं या, वैकल्पिक रूप से, वे न्यास निजी न्यास हैं। उच्च न्यायालय ने इंगित किया है कि विविध न्यायिक वाद संख्या 418 सन् 1952, जिससे सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 225 उद्भूत हुई है, में यद्यपि यह आरोप लगाया कि गई थी कि संपत्तियाँ न्यास संपत्तियाँ नहीं हैं, तथापि बिहार राज्य की ओर से दायर प्रत्युत्तर-हलफनामे में यह कहा गया था कि संबंधित स्थल एक सार्वजनिक स्थल था और

उससे संबंधित संपत्तियाँ अधिनियम के अर्थ में न्यास संपत्तियाँ थीं। विविध न्यायिक वाद संख्या 124 सन् 1953, जिससे सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 226 उत्पन्न हुई है, में भी इसी प्रकार का दावा किया गया था कि स्थल के महंत मठ से संबंधित संपत्तियों के पूर्ण स्वामी थे। वाद संख्या $\frac{34/1952}{106/1953}$ जिससे सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 228 उद्भूत हुई है, में वादियों द्वारा वादपत्र में संशोधन हेतु समय की प्रार्थना की गई थी ताकि वे यह अभ्यर्थना कर सकें कि प्रश्नगत संस्थाएँ निजी प्रकृति की हैं और अधिनियम उन पर लागू नहीं होता। यह प्रार्थना उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर अस्वीकार कर दी गई कि प्रस्तावित संशोधन से वाद का समस्त स्वरूप परिवर्तित हो जाएगा। विविध न्यायिक वाद संख्या 188 सन् 1953, जिससे सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 229 उद्भूत हुई है, में यह दावा किया गया था कि कोई व्यक्त या निर्माणात्मक न्यास अस्तित्व में नहीं है। विविध न्यायिक वाद संख्या 235 सन् 1953, जिससे सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 248 उद्भूत हुई है, में बिहार राज्य की ओर से प्रत्युत्तर-हलफनामा दायर किया गया, जिसमें यह कहा गया कि प्रश्नगत मंदिर एक सार्वजनिक मंदिर है और अधिनियम उस पर लागू होता है। इन सभी मामलों में उच्च न्यायालय ने यह मत ग्रहण किया है, जो हमारे विचार में सही है, कि यह प्रश्न कि न्यास सार्वजनिक हैं या निजी, अथवा संपत्तियाँ निजी हैं या न्यास संपत्तियाँ—ऐसे प्रश्न हैं जिनमें जटिल तथ्यों की जांच तथा साक्ष्य के अभिलेखन की आवश्यकता होती है, और ऐसी जांच रिट कार्यवाही में नहीं की जा सकती। जिस एक वाद की सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी, उसमें यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं हुआ क्योंकि कोई संशोधन अनुमोदित नहीं किया गया था। अतः इन मामलों में ऐसा कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर न्यास की प्रकृति का निर्धारण किया जा सके, यद्यपि सन् 1955 की दीवानी अपील संख्या 343 (1) में, जिसमें आज भी निर्णय दिया जा रहा है, हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम की प्रस्तावना, धारा 3 के उपबंधों तथा धारा 4 की उपधारा (5) को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम में "धार्मिक न्यास" की परिभाषा में वे सार्वजनिक न्यास सम्मिलित हैं—चाहे वे व्यक्त हों या निर्माणात्मक—जिन्हें हिन्दू विधि द्वारा धार्मिक, पुण्य या परोपकारी के रूप में मान्यता प्राप्त है। तथापि, यह निष्कर्ष वर्तमान प्रकरणों में अपीलकर्ताओं के लिए कोई सहायता प्रदान नहीं करता। इन प्रकरणों का परिणाम इस एकमात्र प्रश्न पर निर्भर करता है कि क्या अधिनियम संवैधानिक रूप से वैध है या नहीं। हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम संवैधानिक रूप से वैध है।

परिणामतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलों में कोई भी सार नहीं है। अतः

उन्हें व्यय सहित निरस्त किया जाता है।

अपीलें निरस्त।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।